

॥८॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥

शीतार्तश्चक्षुधार्तश्चपूजामस्मैसमाचर ॥ योहिकश्चिद्विजं हन्यात्तृणां च लोकस्यमातरं ॥ ८ ॥ शरणागतं च यो हन्यात्तुल्यं तेषां च पातकं ॥ अस्माकं विहितावृत्तिः  
कापोतीज्ञातिधर्मतः ॥ ९ ॥ सान्याय्यात्मवतानित्यं त्वद्विधेनानुवर्तितुं ॥ यस्तु धर्मं यथाशक्ति गृहस्थोऽन्यथा ॥ १० ॥ संप्रेत्य लभते लोकानक्षयानिति शुश्रुम ॥  
सत्वं संतानवानघपुत्रवानसिचद्विज ॥ ११ ॥ तत्स्वदेहं देयां त्यक्त्वा धर्मार्थौ परिगृह्य च ॥ पूजामस्मै प्रयुक्ष्वं वं प्रीयेतास्य मनो यथा ॥ १२ ॥ शरीरेमाच संपातं  
कुर्वीथास्त्वं विहंगम ॥ शरीरयात्राकृत्यर्थमन्यान् दारानुपैष्यसि ॥ १३ ॥ इति साशकुनीवाक्यं पंजरस्थ तपस्विनी ॥ अतिदुःखान्विता प्रोक्त्वा भर्तारं समुदेक्षत  
॥ १४ ॥ इति श्रीमहाभारते शांति ० आप ० कपोती प्रतिकपोतवाक्ये पंचचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १४ ॥ भीष्म उवाच सपत्न्यावच  
नं श्रुत्वा धर्मयुक्तिसमन्वितं ॥ हर्षेण महता युक्तो वाक्यं व्याकुललोचनः ॥ १५ ॥ तवैशाकुनिकं दृष्ट्वा विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ सपक्षी पूजयामास यत्नात्तं पक्षिजीविनं ॥ १६ ॥  
उवाच स्वागतं ते घब्रूहि किं करवाणि ते ॥ संतापश्च न कर्तव्यः स्वगृहे वर्तते भवान् ॥ १७ ॥ तद्वीतु भवानक्षिप्रं किं करोमि किमिच्छसि ॥ प्रणयेन ब्रवीमि त्वां त्वहिनः  
शरणागतः ॥ १८ ॥ अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागतं ॥ छुत्तुमप्यागते छायां नोपसंहरते द्रुमः ॥ १९ ॥ शरणागतस्य कर्तव्यमातिथ्यं हि प्रयत्नतः ॥ पंचयज्ञ  
प्रवृत्तेन गृहस्थेन विशेषतः ॥ २० ॥ पंचयज्ञां सुयोमो हान्नकरोति गृहाश्रमे ॥ तस्य नायं न च परो लोको भवति धर्मतः ॥ २१ ॥ तद्विद्मानं सुविश्रब्धो यत्वं वाचावदिष्य  
सि ॥ तत्करिष्याम्यहं सर्वमात्वं शोके मनः कृथाः ॥ २२ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शकुनेर्लुब्धको ब्रवीत् ॥ बाधते खलु मे शीतं संत्राणं हि विधीयतां ॥ २३ ॥ एवमुक्तस्ततः प  
क्षीपणान्यास्तीर्य भूतले ॥ यथाशक्त्या हि पणं नज्वलनार्थं द्रुतं ययौ ॥ २४ ॥ सगत्वांगारकर्म तं गृहीत्वा भिमथागमत् ॥ ततः शुष्केषु पर्णेषु पावकं सोप्यदीपयत्  
॥ २५ ॥ ससंदीप्तं महत्कृत्वा तमाह शरणागतं ॥ प्रतापय सुविश्रब्धः स्वगात्राण्यकुतो भयः ॥ २६ ॥ सतथोक्तस्तथेत्युक्त्वा लुब्धो गात्राण्यतापयत् ॥ अग्निं प्रत्याग  
तप्राणस्ततः प्राह विहंगमं ॥ २७ ॥ हर्षेण महता विष्टो वाक्यं व्याकुललोचनः ॥ तथैवं शकुनिं दृष्ट्वा विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ २८ ॥ दत्तमाहारमिच्छामि त्वया क्षुधायते  
हि मां ॥ सतद्वचः प्रतिश्रुत्य वाक्यमाह विहंगमः ॥ २९ ॥ न मे स्ति विभवो येन नाशयेयं क्षुधां तव ॥ उत्पन्नेन हि जीवामो वयं नित्यं वनौकसः ॥ ३० ॥ संचयोना  
स्ति चास्माकं मुनीनामिव भोजने ॥ इत्युक्त्वा तं तदा तत्र विवर्णवदनोऽभवत् ॥ ३१ ॥ अंगारकर्म तं कर्म गृहसमीपं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ ७६ ॥ ७७ ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ ८० ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥ ८५ ॥ ८६ ॥ ८७ ॥ ८८ ॥ ८९ ॥ ९० ॥ ९१ ॥ ९२ ॥ ९३ ॥ ९४ ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ ९७ ॥ ९८ ॥ ९९ ॥ १०० ॥